

कथक नृत्य में लोक तत्व

यास्मीन सिंह

कथक नृत्यांगना, रायगढ़ घराना, पी-एच.डी. स्कॉलर, रा.मा.तो.सं.क.वि.वि., ग्वालियर (म.प्र.)

डॉ. अंजना झा

विभागाध्यक्ष, कथक नृत्य, रा.मा.तो.सं.क.वि.वि., ग्वालियर (म.प्र.)

सामान्य रूप से कलाओं के संदर्भ में 'लोक' शब्द का अर्थ 'लोककला' लिया जाता है। प्रायः प्रचलन में यही अर्थ सर्वमान्य है। परन्तु वास्तविकता यह है कि 'लोक' शब्द में बहुत-सी संकल्पनाओं का समावेश भी है, जिसे समझना आवश्यक है। सर्वप्रथम 'लोक' का सामान्य अर्थ 'समाज' से है। समाज अर्थात् वह वर्ग जो किसी भी कला की प्रस्तुति में 'प्रेक्षक' या 'दर्शक' की भूमिका में होता है और किसी भी कला से संबंधित कलाकार अपनी कला का प्रदर्शन प्रेक्षक के लिए, उनके सामने, उनके मनोरंजन के लिए करता है।

लोक का वैदिक व पौराणिक परिप्रेक्ष्य

भारतीय संस्कृति और कला परम्परा में भी 'लोक' शब्द एक सुदीर्घ परम्परा का द्योतक भी रहा है, जिसका संबंध प्राचीन शास्त्रों में भी प्राप्त होता है। सबसे पहले यदि हम वेद काल की बात करें, तो इस संस्कृति के संदर्भ में भी 'लौकिक' शब्द प्राप्त होता है, जिसका अर्थ 'लोक' से ही है। वेदों के अध्ययन से लौकिक शब्द के समानान्तर विद्वानों ने 'वैदिक' शब्द का भी प्रयोग किया है। कलाओं की दृष्टि से देखें, तो 'वैदिक' का आशय 'शास्त्रीय' और 'लौकिक' का तात्पर्य 'लोक' से लिया जा सकता है। परन्तु विद्वानों का यह भी मत रहा है, वैदिक परम्परा मूलतः देवताओं के लिए रूढ़ हो गई और सामान्य जन के लिए 'लौकिक' शब्द प्रचलित हो गया। इस प्रकार वेदों से सम्बद्ध 'वैदिक' और 'लौकिक' शब्दों कलाओं के साथ-साथ भाषा की दृष्टि से भी प्राप्त होता है। विदूषी संस्कृताचार्य डॉ. पूर्णिमा केलकर ने वैदिक संस्कृत भाषा और लौकिक संस्कृत भाषा का उल्लेख भी किया है। डॉ. केलकर का मत है, कि वेद मूलतः वैदिक संस्कृत भाषा में लिखे गये और वेदों के मंत्रों का सरलीकरण करते हुए उसे कथा और उपदेश के रूप में परिवर्तित कर पुराणों की रचना की गई, जिसकी रचना लौकिक संस्कृत भाषा में थी। पुराणों में कथा-उपदेश के साथ-साथ कलाओं का भी उल्लेख किया गया है, जिसका संबंध 'लोक' से है अथवा 'लोक' के लिए है।

इस बात का उल्लेख आवश्यक है, कि वेद और पुराण भारतीय संस्कृति और कलाओं की तत्कालीन परम्परा का प्रतिनिधित्व तो करते ही हैं, इसके अतिरिक्त कहीं-न-कहीं वर्तमान भारतीय शास्त्रीय संगीत (गायन, वादन और नृत्य) तथा लोक संगीत की प्राचीन अवधारणा को भी स्पष्ट एवं प्रमाणित करने में सक्षम हैं। वेदों में संगीत-कला सम्बन्धी पर्याप्त प्रमाण प्राप्त होते हैं। 'वैदिक काल में नृत्य के अनेक स्वरूप समाज में प्रचलित थे। नृत्य के साथ गायन एवं वादन का भी रिवाज था। नृत्यों के प्रदर्शन के लिए छोटे-छोटे रंगमंच निर्मित किये जाते थे। स्त्रियाँ नृत्य प्रदर्शन के समय अलंकारों से सुसज्जित होती थीं। दैनिक जीवन संगीतमय था। विवाह इत्यादि सामाजिक उत्सवों एवं त्योहारों पर नृत्य का विशेष आयोजन होता था।' वेदों में 'वैदिक' और 'लौकिक' पद्धति से नृत्यादि कलाओं के प्रयोग का उल्लेख किया गया है। वैदिक कलाओं का संबंध देवताओं द्वारा प्रयोग की जाने वाली कलाओं से था जबकि लौकिक कलाओं का व्यवहार 'जनसामान्य' के लिए निश्चित कर दिया गया, ऐसा विद्वानों का मत है।

लोक का भरतकालीन परिप्रेक्ष्य

कालान्तर में, संगीत की दृष्टि से वैदिक और पौराणिक कालीन 'लौकिक' परम्परा का पुनः विस्तार हुआ। इस संबंध में भरत के नाट्यशास्त्र का उल्लेख आवश्यक है। मुनि ने नाट्योत्पत्ति की कथा में ब्रह्मा द्वारा जनरंजन हेतु चारों वेदों के आधार पर 'पंचम वेद' या 'नाट्यवेद' की रचना किये जाने का उल्लेख किया है। नाट्यशास्त्र को नाट्य, नृत्य, गायन, वादन आदि कलाओं को सर्वाधिक प्रमाणित ग्रंथ माना गया है। इस संदर्भ में उल्लेखनीय तथ्य यह है कि ब्रह्मा ने जिस नाट्यवेद की रचना 'लोक' के रंजन के लिए की, उसमें भगवान शिव के 'ताण्डव नृत्य' का उल्लेख किया गया है और देवी पार्वती के माध्यम सुकुमार 'लास्य नृत्य' की संकल्पना प्रस्तुत की गई है। यहाँ भी नृत्यकला कला को दो भागों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है। कथक नृत्य में 'ताण्डव' और 'लास्य' का ही समन्वित स्वरूप नृत्त और नृत्य के रूप में दिखाई देता है।

भरत (ना.शा., 4/267) ने विवाह, पुत्रजन्म, विजयोत्सव आदि सामाजिक अवसरों पर नृत्त के प्रयोग का निर्देश दिया है, जो कथक के 'नृत्त पक्ष' से बिलकुल ही अलग है। किन्तु नृत्त के संदर्भ में भरत द्वारा यह भी कहा गया है, कि यद्यपि नृत्त किसी भी प्रकार की अभिव्यक्ति से रहित है तथापि इसे सौन्दर्य की सृष्टि होती है और यह मनुष्यों का स्वभाव से प्रिय है। अतएव नृत्त की संकल्पना का मूल आधार पर 'लोक' है। चूँकि यह कथक जैसे शास्त्रीय नृत्य का एक मुख्य अंग है, अतः इसकी पड़ताल आवश्यक है।

लोक का देशी परिप्रेक्ष्य

विद्वज्जनों ने संगीत अर्थात् गायन, वादन और नृत्य के संदर्भ में 'मार्ग' और 'देशी' ये दो मानक भी निश्चित किये हैं। गायन-वादन की दृष्टि से 'मार्ग' अब व्यवहार में नहीं हैं, अतः गायन और वादन मूलतः 'देशी' के अंतर्गत स्वीकार किया गया है। जबकि नृत्य के संदर्भ में 'मार्ग' से आशय शास्त्रीय नृत्य और 'देशी' का आशय 'लोक नृत्य' से है। प्रायः संगीत जगत में उक्त दोनों ही संकल्पनाएँ समान रूप से स्वीकार की गई हैं। डॉ. पुरु दाधीच ने 'कथक नृत्य शिक्षा' (भाग-1/पृ.5-6) में इस तथ्य का उल्लेख किया है, कि ग्रामीणों द्वारा बढ़ती हुई लय के साथ क्रमशः तीव्र गति से अंगों का संचालन किया जाता है, तो इस प्रकार के नृत्य को 'देशी नृत्य' कहा जाता था और शास्त्रों के नियमों से बंधे हुए नृत्य को प्राचीन काल में 'मार्ग नृत्य' और आजकल 'शास्त्रीय नृत्य' कहा जाता है। प्रसिद्ध विद्वान भगवत शरण उपाध्याय ने भी मार्ग को शास्त्रीय और देशी लोकगीतों के रूप में स्वीकार किया है।²

'मार्ग' और 'देशी' के विषय में वरिष्ठ संगीतशास्त्रीय डॉ. अनिल बिहारी ब्योहार का मत कुछ अलग है। डॉ. ब्योहार ने 'मार्ग' और 'देशी' से संबंधित विभिन्न मतों के आधार पर एक नवीन संकल्पना का सूत्रपात किया है, जिसके अनुसार उन्होंने 'मार्ग' को 'परम्परा' के रूप में स्वीकार किया है और देशी को 'प्रयोग' का पर्याय माना है। उनका मत है, कि संगीत (गायन, वादन और नृत्य) में परम्परा का विशेष स्थान है अतः इसकी शिक्षा परम्परा के आधार पर ग्रहण की जानी चाहिए और इसकी साधना के उपरान्त देशी आधार पर प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि साधना के पश्चात् कलाकार परिपक्व हो जाता है और वह प्रयोग करने लगता है, जो कलाओं के विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण भी है। अतः कथक नृत्य की दृष्टि से यदि देखें तो एक ओर यह नृत्त पक्ष और भाव पक्ष का समन्वित रूप है, किन्तु इसकी अपनी विस्तृत और सुदीर्घ परम्परा भी है। साथ ही इसमें प्रयोग भी किये जा रहे हैं। अतः कथक नृत्य की परम्परा ही इस नृत्य का 'मार्ग' पक्ष है और इस नृत्य में होने वाले प्रयोग 'देशी' के अंतर्गत स्वीकार किये जा सकते हैं।

कथक नृत्य का लौकिक परिप्रेक्ष्य

अब प्रश्न यह कि वे कौन-से या किस प्रकार के 'लोक तत्व' हैं, जिनका समावेश कथक नृत्य में है। क्योंकि कथक नृत्य को शास्त्रीय नृत्य माना गया है। परन्तु इस में लोक तत्वों के समावेश होने की चर्चा भी सामान्यतः होती रही है। कथक नृत्य के इतिहास पर यदि दृष्टिपात करें, तो ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिनके कारण कथक नृत्य पर लोक का प्रभाव सिद्ध होता है। सर्वप्रथम मंदिर कालीन कथक नृत्य लोक में ईश्वरीय आराधना और भक्ति के प्रचार के साधन के रूप में व्यवहार में था। चूँकि इसका व्यवहार समाज में सामान्य लोगों के बीच हुआ करता था, अतः कथक प्रारंभिक स्वरूप लोक पर निर्भर रहा हो।

साहित्य की दृष्टि से यदि भक्तिकालीन रचनाओं की बात करें, तो ज्ञात होता है, कि ब्रज में तुलसीदास, मीरा बाई, वल्लभाचार्य, स्वामी हरिदास, लक्ष्मी स्वामी जैसे अनेक रचनाकार व कवि हुए। ब्रज के ही एक रचनाकार लक्ष्मी स्वामी का उल्लेख प्राप्त होता है, जो कृष्ण भक्ति के अनुयायी थे और उन्होंने रासलीला और रासनृत्य पर आधारित रचनाएँ लिखीं, जैसे—

“नाचत रास में रास—बिहारी।

नँचवत हैं ब्रज की सब नारी।।

तादीम—तादीम तत—तत थेई—थेई।

थुंगन—थुंगन देत गात न्यारी।।”³

पं.तीरथराम आज़ाद ने भी इस संबंध में उल्लेख किया है, कि— 'रास के समय मण्डली के स्वामी नृत्य के बोल बोलते हैं। इनके बोल निम्नलिखित हैं—

थेई त् त् ता, थेई त् त् ता, थेई त् त् ता...।

तत्ती, तत्ती, तत्ती तिरकिट...।

तकिट धकिट धिल्लांग थो...।

थो थिल्लांग, थो थिल्लांग, त्राम, त्राम...”⁴

आरती श्रीवास्तव ने भी उल्लेख किया है, कि संक्रमण काल में रासलीला के प्रसिद्ध आचार्य जब स्वयं को बचाते हुए किसी अन्य स्थान में आश्रय लेने लगे, तब वे कृष्ण के सम्पूर्ण लीलाओं को प्रस्तुत न करते हुए उनके कुछ खण्डों का रास नृत्य के टुकड़े, परमूल इत्यादि को प्रदर्शित करते थे। परमूल के कुछ उदाहरण निम्नानुसार हैं—

‘श्रीकृष्ण के नृत्य का परमूल

तिकट तिकट धिलांग धिकतक, तोदीम धिलांग, तकतो।
ता धिलंग, धिग धिलंग, धिकतक, तोदीम तोदीम, धेताम धेताम।।’
धिलांग धिलांग धिलंग तक गदिगन थेई।
त त त ता थेई, त त त ता थेई, त त त थेई।।

राधा के नृत्य का परमूल

तात् त्रंग, थुन थुन तो, धिकतू त्रंग, थुन थुन तो।
ता थुन थुन, धिक थुन थुन, धिक तक, थुंग थुंग तक।।
थुंग थुंग तक, थुंग थुंग थुंग तक गदिगन थेई।
त त त ता थेई, त त त ता थेई, त त त थेई।।⁵

कुछ विद्वानों का कथन है कि वल्लभ नामक एक नृत्याचार्य, जो राजस्थान के मूल निवासी थे। तत्कालीन आमेर के महाराजा मानसिंह ने वल्लभ नर्तक को वृंदावन भेजा, जहाँ उन्होंने अपना शेष जीवन समर्पित कर दिया। आजाद जी के अनुसार— ‘16वीं शताब्दी में महाप्रभू वल्लभाचार्य जी ने इसका पुनरुद्धार करने का काम अपने हाथ में लिया। उनसे पूर्व रासलीलाओं में संस्कृत के छन्दों का प्रयोग हुआ करता था।’⁶ वल्लभाचार्य एक कथक नर्तक थे, जिन्होंने परम्परागत प्रिमलूओं के अतिरिक्त स्वयं भी अनेक रचनाएँ रचीं।

डॉ. श्याम नारायण पाण्डेय ने रासलीला में प्रयुक्त गीतों को कविताश्रित होने के साथ-साथ किसी-न-किसी रूप में आबद्ध होने की बात कही है।⁷ ऐसी ही एक कविताश्रित रचना का उल्लेख डॉ. माया टॉक ने भी किया है—

‘नाचत गोपाल संग, प्रेम सहित रास—रंग,
तत थेई तत थेई करत घोष नागरी ।।

...

कृष्णदास प्रभु गिरीधर मोहि लिए, सुबस किए,
तरनि—तनया तीर बधू गुननि आगरी।।⁸

वस्तुतः ब्रज में व्यवहारिक रूप से होने वाले नृत्य को और अधिक आकर्षक एवं चमत्कारिक बनाने के लिए नृत्य के बीच-बीच में नृत्त का भी समावेश निरर्थक बोलों का समावेश कर किया जाने लगा, जिससे इसके सौन्दर्य में भी और अधिक वृद्धि होने लगी। कालान्तर में यही पद्धति कथक नृत्य में स्वीकार कर ली गई। इसके अतिरिक्त 13वीं शताब्दी से लेकर 19वीं शताब्दी के मध्य अनेक गायन शैलियों का भी उद्भव हुआ, जैसे ध्रुपद, धमार, ख्याल, भजन, ठुमरी, होरी, गज़ल आदि। इन गायन शैलियों के आधार पर नृत्य के नामों का यत्र-तत्र उल्लेख प्राप्त होता है, जैसे— ‘होरी नृत्य’, ‘ठुमरी नृत्य’, ‘रास नृत्य’, ‘ध्रुवपद नृत्य’, ‘नटवरी नृत्य’, ‘दरबारी नृत्य’ आदि। इनमें से होरी, ठुमरी, रासनृत्य सीधे तौर पर लोक से संबंधित हैं।

कथावाचन से कथक

इतिहास इस बात का भी साक्षी है, कि प्राचीन भारत में कथावाचकों द्वारा पौराणिक प्रसंगों व कथाओं का वाचन किया जाता था, जिसके साथ-साथ वे अभिनय भी किया करते थे। कथावाचकों का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से लोक परम्परा से ही रहा है तथा समय-समय पर इतिहासकारों ने कथावाचन का संबंध कथक नृत्य के प्राचीन स्वरूप से जोड़कर प्रस्तुत किया है। पौराणिक कथाओं के साथ-साथ रामायण और महाभारत की कथाओं का भी वाचन किया जाता था। जहाँ कुछ विद्वानों ने कथक का संबंध कथावाचन करने वाली एक जाति से जोड़कर देखा है, तो कुछ विद्वानों ने रामायण, महाभारत, जैन धर्म के प्राचीन ग्रंथ, पौराणिक ग्रंथ और संस्कृत साहित्य के विभिन्न ग्रंथों में उल्लिखित ‘कथक’, ‘कथिक’, ‘कहुग’, ‘चारण’, ‘नट’ आदि से संबंध स्थापित करने का प्रयास किया है। पं.तीरथराम आजाद ने राजस्थान की एक जाति का उल्लेख किया है, जो कृष्ण से संबंधित विभिन्न प्रसंगों को ‘कथते’ थे। ‘कथना’ शब्द राजस्थान में बहुप्रचलित है। डॉ.प्रेम दवे ने भी चारण और कथावाचकों का संबंध ‘कथक नृत्य’ से जोड़कर प्रस्तुत किया है।

छत्तीसगढ़ की लोक परम्परा में आज भी पांडवों से जुड़ी कथाओं का वाचन किया जाता है, जिसे ‘पडवानी’ कहा जाता है। पंडवानी अर्थात् ‘पांडवों की वाणी’। पांडवों से जुड़े किसी प्रसंग का वाचन करते

हुए कलाकार बीच-बीच में अभिनय भी करता है और गायन भी। उल्लेखनीय है, कि ब्रज की रासलीला के ही समानान्तर छत्तीसगढ़ में 'रहस' नाट्य विकसित हुआ। इसी क्रम में 'बस्तर अंचल में हल्बी, भतरी बोलने वाले उड़िया प्रेमी आदिवासियों के बीच मनोरंजनार्थ जिस नृत्यात्मक गीत-नाट्य का प्रचलन है, उसे बस्तर संभाग में भतरा नाट कहलाता है। नाचा-गम्मत भी छत्तीसगढ़ के प्रसिद्ध लोक-नाट्य रहे हैं। विद्वानों के मतानुसार— 'लोक नाट्य में कथा का उद्गम आवेग, अंचल विशेष की बोली, अंचल विशेष के प्रतिकात्मक पात्र और सहज श्रृंगार निरूपण का समावेश होता है। संगीत युक्त गीत, नृत्य और अभिनय लोक नाट्य के अंतरंग पक्ष हैं।' ⁹ लोक नाट्य में गीत, संगीत और नृत्य होते हैं, जिसे कथा सूत्र में पिरोकर प्रेरणादायी और सरस बनाया जाता है। ¹⁰ कलाकारों को अभिनय, गायन, वादन और नृत्य के प्रस्तुतिकरण की पूरी स्वतंत्रता होती है। राजस्थान का घूमर और कालबेलिया लोक नृत्यों का प्रभाव कथक के जयपुर शैली में देखा जा सकता है। इसी प्रकार लखनऊ का नवाबी और लखनवी अंदाज़ कथक की लखनऊ शैली में और बनारस के जनमानस में आध्यात्म कथक की बनारस शैली में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

उल्लेखनीय है, कि 20वीं शताब्दी में रायगढ़ के राजा चक्रधर सिंह द्वारा कथक नृत्य के विकास को एक नई दिशा प्रदान की। राजा चक्रधर सिंह को कथक नृत्य के विकास के लिए योग्य शिष्यों की तलाश थी। अक्सर गणेशोत्सव के समय जो गम्मत या नाचा की पार्टियाँ तथा पंडवानी के कलाकार रायगढ़ आते थे उन्हीं में से बाल कलाकारों को चुनाव किया जाता। राजा साहब ने जिन लोक कलाकारों को विभिन्न गुरुओं से कथक नृत्य का प्रशिक्षण दिलवाया, उनमें 'अनुजराय, मुकुलराय, कार्तिक, कल्याण, फिरतूदास, बर्मनलाल, ननकी यादव, भगवानो, तीरथराय आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।' ¹¹ इन कलाकारों को राजा साहब ने जयपुर, लखनऊ और बनारस घराने के ख्याति लब्ध कथकाचार्यों से कथक नृत्य की विधिवत शिक्षा दिलवायी। इन कलाकार की कथक नृत्य शैली में छत्तीसगढ़ी लोक नृत्य और नाट्य की छाप दिखाई देती थी, इस बात का उल्लेख रायगढ़ घराने के वरिष्ठ नर्तक पं.रामलाल द्वारा अपने साक्षात्कार में किया गया है।

निष्कर्ष

भारतीय शास्त्रीय नृत्य परम्परा में कथक नृत्य का स्थान विशिष्ट है और संभवतः यही कारण है अपेक्षाकृत इस शास्त्रीय नृत्य में प्रयोग अधिक किये जा रहे हैं। विभिन्न बिन्दुओं में किये गये अध्ययन के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है, कि कथक नृत्य लोक परम्परा के मार्ग से शास्त्रीय परम्परा तक पहुँचा है, जिसके कारण इस नृत्य शैली कभी क्षेत्रियता के आधार पर तकनीकी तत्वों का समावेश हुआ, तो कभी लोक गायन शैलियों और उप-शास्त्रीय गायन शैलियों में निहित लौकिक चेतना ने इसे पृथक्-पृथक् रूप-स्वरूप प्रदान किया, जिसके कारण यह नृत्य भारत का सबसे अधिक प्रसिद्ध शास्त्रीय नृत्य बन चुका है।

संदर्भ सूची :

1. टाक, प्रोफेसर माया, लेख— "वैदिक युग में नृत्य-कला", संगीत पत्रिका (वैदिक संगीत अंक), संगीत कार्यालय, हाथरस, वर्ष 73, अंक 1, जनवरी 2007, पृ.98
2. उपाध्याय, भगवत शरण, 'भारतीय संगीत की कहानी', राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, संस्क. 1957, पृ.10
3. मीतल, प्रभुदयाल, 'ब्रज का सांस्कृतिक इतिहास', भाग-2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्क. 1966, पृ.207
4. आज़ाद, पं. तीरथराय, 'कथक दर्पण', नटेश्वर कला मंदिर, नई दिल्ली, संस्क. 2020, पृ.65
5. श्रीवास्तव, आरती, 'ब्रज-रास में संगीत उत्पत्ति, विकास और स्वरूप', राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, संस्क. 2003, पृ. 186
6. आज़ाद, पं. तीरथराय, 'कथक ज्ञानेश्वरी', नटेश्वर कला मंदिर, नई दिल्ली, संस्क. 2020, पृ.446
7. पाण्डेय, डॉ. श्याम नारायण, 'ब्रज-रासलीला स्वरूप और विकास', रत्नालय प्रकाशन, कानपुर, संस्क. 1987, पृ. 212
8. टाक, डॉ.माया, 'ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कथक नृत्य', कनिष्क पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, संस्क. 2006, पृ. 149
9. यादव, डॉ. राजन, "छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य", पं.सुन्दरलाल शर्मा मुक्त विश्वविद्यालय, बिलासपुर, संस्क. 2017, पृ. 66
10. निर्माण, पूजा, "भारत के हिन्दी राज्य छत्तीसगढ़", कुणाल प्रकाशन, दिल्ली, संस्क. 2011, पृ. 168
11. बलदेव, डॉ., "रायगढ़ का सांस्कृतिक वैभव", छत्तीसगढ़ राज्य हिन्दी ग्रंथ अकादमी, रायपुर, संस्क. 2008, पृ.148

